Volume: 4 Issue: 5 Pages: 192-194

बाजारवादी परिदृश्य में समाज और साहित्य

*[1] मिस्टर दीपक

*[1] शोधार्थी, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, दिल्ली, भारत।

Article Info.
E-ISSN: 2583-6528
Impact Factor (SJIF): 6.876
Peer Reviewed Journal
Available online:
www.alladvancejournal.com

Received: 26/April/2025
Accepted: 28/May/2025

***Corresponding Author**
मिस्टर दीपक
शोधार्थी, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, दिल्ली, भारत।

सारांश
अत्यंत व्यावसायिक दृष्टिकोण से प्रचारित एवं प्रसारित बाजारवादी व्यवस्था के अंतर्निहित उद्देश्यों तथा उसकी कार्यशैली का पूरे सामाजिक एवं साहित्यिक परिदृश्य पर पड़ने वाले प्रभावों का विश्लेषण तथा मूल्यांकन, कि किस प्रकार यह सामाजिक अवधारणाओं के अवमूल्यन तथा स्वयं की आवश्यकताओं के आधार पर निर्मित योजनाओं की स्थापना को सुनिश्चित करते हुए मानवीय व्यवहारों एवं मूल्यों के परिवर्तन को दिशा देता है।

मुख्य शब्द: बाजारवाद, उपयोगितावाद, मानव मूल्य, सामाजिक अवधारणा, व्यक्तिनिष्ठता, साहित्य तथा परिवेश।

प्रस्तावना:

साहित्य की सत्ता उस वास्तविकता और समय संदर्भित विषयों से सृजित होती है, जो सामाजिक परिवर्तन एवं विकास के संदर्भ में आधार भूमि तैयार करते हैं, जो समाज को निरंतर गतिशीलता प्रदान करते हैं, साहित्य की इसी विशिष्ठता तथा प्रवृत्ति के कारण ही, साहित्य को सामाजिक वैशिष्ट्य को प्रतिबिंबित करने वाले दर्पण के रूप में देखा जाता है।

चूंकि साहित्यकार अपने परिवेश से प्रेरणा रूपी प्राण को ग्रहण करता है, तत्पश्चात अपनी संवेदनशील दृष्टि और सूक्ष्म एवं कारुणिक अभिव्यक्ति क्षमता के योग से उन विशिष्ठ घटनाओं को साहित्यिक रूप में सृजित करता है, जो न केवल वास्तविकता के उदघाटन की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं, बल्कि वे सामाज को दिशा प्रदान करने की दृष्टि से भी, नितांत उपयुक्त हैं । इस दृष्टिकोण से देखें तो यह स्पष्टतः कहा जा सकता है, कि प्रत्येक मनुष्य अपने परिवेश के प्रतिफल के रूप में विकसीत होता है, परिवेशगत दबाव विचारों, वस्तुओं एवं धारणाओं को विशिष्ठ आकार एवं दिशा प्रदान करते हैं। इस प्रकार प्रमुख सामाजिक विशिष्ठता साहित्यिक वैशिष्ठ्य को भी आकार प्रदान करती है। इसी संदर्भ में डॉ० भागीरथ मिश्र लिखते हैं।

"साहित्य और समाज का अटूट और अगाध संबंध है। समाज की जीवनधारा में साहित्य का कलमवत विकास होता है। वह समाज की धरती पर उगने वाले जीवन का फूल है साहित्य सुगन्ध है, मधुरिमा है वह रूप सौंदर्य और प्रगति के प्रभाव का साकार चित्र है।," [1] इसी कड़ी में साहित्य की सामाजिक प्रतिबद्धता पर प्रकाश डालते हुए डॉ. श्याम सुन्दरदास कहते हैं, कि- "समाजिक मस्तिष्क अपने पोषण के लिए जो भाव सामग्री निकालकर समाज को सौंपता है उसके संचित भंडार का नाम साहित्य है। अत: किसी जाति के साहित्य को हम उस जाति की सामाजिक शक्ति या उसका सभ्यता निर्देशक कह सकते हैं। वह उसका प्रतिरूप, प्रतिछाया या प्रतिबिम्ब कहला सकता है। जैसी उसकी सामाजिक व्यवस्था होगी वैसा उसका साहित्य होगा।" [2] साहित्य की इसी अवधारणा को और अधिक परिपुष्ट करते हुए तथा समाज और साहित्य के अंतर्संबंधों को स्पष्ट करते हुए हिंदी साहित्य के प्रमुख आलोचक आचार्य रामचंद्र शुक्ल उहते हैं, कि "जबकि प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चितवृत्तियों का संचित प्रतिबिंब होता है, तब यह निश्चित है कि जनता की चितवृत्तियों के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है।" [3]

इन सभी परिभाषाओं के अनुसार यह स्पष्ट होता है, कि साहित्यिक विषयवस्तु का उद्गम स्रोत कोई बाह्य अथवा पूर्णत:चमत्कारिक शक्ति नहीं है, बल्कि यह समाज संदर्भित विभिन्न परिस्थितियों यथा आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक तथा धार्मिक द्वारा निसृत है। ठीक इसी

सिद्धांत का प्रतिपादन कर कथा सम्राट मुंशी प्रेमचंद ने साहित्य जगत को उसके वास्तविक चेहरे से साक्षात्कार कराने का कार्य किया, उन्होंने अपने विशाल साहित्य भंडार हेतु सामाजिक वास्तविकताओं, अनुभवों आदि का सहार लेते हुए अपने समय की विशिष्ठताओं का उदघाटन अत्यंत कलात्मक रूप में किया।

अब जब हम बाजारवादी व्यवस्था के प्रभाव का अवलोकन करते हैं, तो साहित्य के एक विशिष्ठ रूप का दर्शन होता है, जिसको हम बाजारवाद के विश्लेषण के माध्यम से समझ सकते है। बाजारवाद का प्रादुर्भाव उदारीकरण की नीति तथा तकनीकी एवं सूचना आधारित क्रांति के प्रणाम स्वरूप उत्पन्न भूमंडलीकरण की अवधारणा के विकास के परिणाम स्वरूप हुआ। हालांकि बाजार और मनुष्य का संबंध अत्यंत प्राचीन समय से रहा है, मनुष्य कृषि आधारित तथा हस्त- निर्मित उत्पादों के उपभोग तथा विपणन के माध्यम से अपनी जरूरत धारित उपभोग वृत्ति के आधार पर उपयोग को तरजीह देता रहा था। यद्यपि उस समय भी अंतर्राष्ट्रिय व्यापार होते थे, लेकिन उत्पादकता में कमी तथा सीमित उत्पादन क्षमता के कारण बाजार का प्रभाव जीवन में सीमित तथा अवश्यकता आधारित हुआ करता था। लेकिन तकनीकी क्रांति के पश्चात् औद्योगिक क्रांति ने उत्पादकता की क्षमता में अभूतपूर्व वृद्धि को सुनिश्चित किया। उत्पादन क्षमता इस कदर बढ़ी की अब उसका विपणन ही सबसे बड़ी चुनौती बन गई। पश्चिम की इस उपलब्धि ने उसे वैश्विक स्तर पर व्यापार की वृद्धि एवं विस्तार हेतु प्रेरित किया, जिसके पश्चात् उदारीकरण तथा वैश्वीकरण की पहल हेतु योजनाओं का निर्माण किया गया तथा समाजिक आर्थिक सशक्तीकरण के नारे के साथ योजनाबद्ध रूप से इस पहल को क्रियान्वित किया गया।

लेकिन यहाँ ध्यान देने वाले कई बिंदुओं में से एक बिन्दु यह महत्वपूर्ण एवं विचारणीय है कि इस प्रस्ताव का प्रतिपादन करने वाली वह पश्चिमी शक्तियां हैं, जो पूर्व में साम्राज्यवादी ताकतें हुआ करती थीं, इसलिए प्रारंभ में उन्होने वैश्वीकरण की पृष्ठभूमि में मानवतापूर्ण नारों का सहयोग लिया,विकास के सपने बेचे, लेकिन उदारीकरण तथा वैश्वीकरण के अभी तक के मूल्यांकन के पश्चात् उनके मनसूबे भी साफ होने लगे हैं। वहीं दूसरी ओर अगर तीसरी दुनिया जिस पर ये नीतियाँ थोपी गई उन्हें विभिन्न ऐतिहासिक परिस्थितियों में कभी उपनिवेशीकरण के कारण, कभी पश्चिमीकरण के कारण और कभी आधुनिकीकरण के कारण इन समाजों को अपने इतिहास और राजनीतिक, सांस्कृतिक परंपराओं के आधार पर लोकतांत्रिक संस्थाओं को विकसित करने का मौका नहीं मिला। उन्हें मजबूत लोकतंत्र के रूपों को चुनना पड़ा जो भिन्न आबो-हवा में विकसित हुए थे और उन्हें अपनाने के लिए अपनी परंपराओं से जहाँ तक हो सके, नाता तोड़ना उनके लिए आवश्यक हो गया।" [4] इस आधार पर जहाँ बड़ी पश्चिमी अर्थ व्यवस्थाऐं जो विस्तृत पूंजी के बल पर औद्योगिक क्रांति के माध्यम से अद्भुतपूर्व उत्पादन क्षमता हासिल करने के पश्चात् उदारीकरण नामक एक ऐसी अवस्था का समर्थन साझा विकास के नाम पर करती है। जो किसी भी रूप में न ही उचित है, क्योंकि तीसरी दुनिया के बाजार तो सहभागीतापूर्ण है, नाही बराबरी की दृष्टि से ही उचित है, क्योंकि तीसरी दुनिया के बाजार तथा उनकी उत्पादन क्षमता का पूर्णतः विकास तथा उत्पादन दक्षता पश्चिमी की बड़ी अर्थ-व्यवस्थाओं के समक्ष ना के बराबर है, उसी का फायदा उठाते हुए इस योजना के तहत बड़ी अर्थ-व्यवस्थाओं ने तीसरी दुनिया के बाजारों पर कब्जे की दृष्टि से इस उदारीकरण तथा वैश्वीकरण की नीती को प्रोत्साहित किया जिसके परिणाम स्वरूप बाजारवाद तथा उपभोक्ताद का विकास हुआ। "पूरी दुनिया के संसाधनों तक अपनी निर्वाध और एकाधिकारी पहुँच बनाये रखने के लिए विश्व पुँजीवादी व्यवस्था महानगरीय सभ्यता और जीवन शैली को बढ़ावा देने में लगी रहती है। यह ऐसी राजनीतिक संस्कृति है,जिसमें उपभोक्तावाद नागरिकों पर हावी रहता है।नागरिकता को उपभोक्तावाद के मातहत बना कर यह व्यवस्था अपनी सत्ता का आधार स्थापित करती है।नागरिकता का विचार मूलतः सीमाबद्ध भू-क्षेत्रीयता का विचार है, जबकि उपभोक्तावाद सीमाहीन भूमंडलीय राजनीति और बाजार के हाथों का औजार बन सकता है।" [5]

यानि वैश्विक स्तर पर जिस मानवता के विकास का नारा उदारीकरण तथा वैश्वीकरण रूप में उछाला गया था वह भी आर्थिक महत्वाकांक्षाओं तथा अन्य उद्देश्यों पर आधारित षड्यंत्रपूर्ण नीति के रूप में निरंतर स्पष्ट होता रहा है। क्योंकि वैश्वीकरण के आश्रय में पनपा बाजारवाद जिसने उपभोक्तावाद की नीति को प्रश्रय दिया उसने अधिकतम लाभ कमाने की दृष्टि से केवल विपणन पर ही बल नहीं दिया, बल्कि वह उसके लिए नैतिकता की सभी सीमाओं को पार करता नज़र आया है।

बेतहासा उत्पादन क्षमता के विकास के पश्चात् पश्चिमी औद्योगिक प्रतिष्ठानों के समक्ष सर्वाधिक बड़ी चुनौति रही उन उत्पादों के बिक्री की, जिसके अभाव में वे उन्हीं के लिए घाटे का सौदा सिद्ध होता, अतः उन्हें निरंतर नित्य नए बाजारों की आवश्यकता महसूस हुई, जिसके लिए उन्होंने विज्ञापनों तथा अन्य तकनीकी विधियों के सहयोग द्वारा लोगों को अधिक-से अधिक अपनी ओर आकर्षित करने का कार्य किया। "इसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए उदारतावादी राज्य पहले से मौजूद भू-क्षेत्र आधारित स्थानीय सामुदायिक संस्कृतियों का सफाया करके एक ऐसी संस्कृति बनाने की कोशिका करता है, जिसमें नागरिकता के आधार पर व्यक्तियों की एसोसियेशने उपभोक्ता और उत्पादक के रूप में कार्यरत रहती है। समझा जाता है, कि यह नयी संस्कृति राज्य को पूरे समाज के प्रबंधन और रूपांतरण का अधिकार देती है।" [6]

इस प्रकार बाजारवाद ने उपभोक्तावाद के प्रसार द्वारा अपने अंतर्निहित उद्देश्यों की सिद्धि हेतु निरंतर कई स्तरों पर कार्य किया।उपभोक्तावाद ने उपभोग के विस्तार के लिए न केवल बड़े औद्योगिक प्रतिष्ठानों का निर्माण किया, बल्कि उपयोग की प्रवृत्ति को अधिक तीव्र एवं सतत् बनाने के भी प्रयास किए। उपभोक्तावाद ने उपयोगितावादी दृष्टि का प्रसार किया अर्थात जो ज्यादा उपयोगी वह उताना ही महत्वपूर्ण जिसके परिणाम स्वरूप "उपयोग करो और फेंको" की प्रवृत्ति का विकास हुआ और इसी धारण के विकास का ही तो यह परिणाम है,की तीसरी दुनिया के लोग बिना इस बात की फिक्र किए उनके अपने देश की उत्पादन क्षमता की क्या दशा है, परिचमी द्वारा निर्मित उत्पादों के उपयोग की ओर प्रवृत्त हो सके।

इसके साथ यही उपभोक्तावादी अवधारणा द्वारा प्रसारित उपयोगितावादी दृष्टि ने जहाँ एक ओर लोगों को राष्ट्रिय भावनाओं से मुक्त हो उपयोगिता के आधार पर उपयोग हेतु प्रेरित किया वहीं, इस उपयोगीतावादी दृष्टि ने मानवीय मूल्यों को भी उपयोगिता के तराजू पर तौलना शुरू कर दिया, जिसका परिणाम यह हुआ कि व्यक्ति दिनोदिन आत्मकेंद्रित तथा स्वार्थी होता गया और उपयोगिता के आधार पर ही वह मानवीय संबंधों को तौलने लगा, जिसके परिणाम स्वरूप जो भी उपयोगिता के पैमान पर सटीक न बैठता वह उसके लिए मूल्यहीन होता गया और मानवीय तथा सामाजिक संबंधों में सतत् ह्रास आने लगा। जिसके परिणाम स्वरूप समाज में वृद्ध विमर्श जैसे मुद्दे पनपने लगे। इसके साथ ही बाजारवाद की अधिक से अधिक लाभ कमाने की प्रवृत्ति ने विभिन्न क्रियाकलापों के माध्यम से उपभोक्ता व्यवहार में परिवर्तन की रणनीति बनाई जिससे, मनुष्य की उपभोग प्रवृत्ति को निरंतर और सतत बनाया जा सके। "भूमंडलीकरण ने पूंजी के प्रवाह को ही उन्मुक्त नहीं,किया, बल्कि सांस्कृतिक सीमाओं को भी छिन्न-भिन्न कर दिया है। स्वतंत्र बाजार ने विज्ञापन द्वारा प्रत्येक देश की संस्कृति को प्रभावित किया है। विज्ञापनों की हवा पर सवार हो कर उपभोक्तावाद दूर- दूर तक यात्रा करता है। हर कहीं विशिष्ठ वर्ग पश्चिमी सुख- साधन का सामान आयात कर रहा है। यदि इस पर रोक लगाई जाती है तो मानव अधिकार और मानव स्वतंत्रता का हवाला दिया जाता है। सेटेलाइट और साइबर स्पेस पर आधारित सूचना की बाढ को रोकने में कोई

भी बाधा समर्थ नही है।" [7] इस प्रकार बाजारवाद ने उपभोक्तावाद के प्रसार के माध्यम से विज्ञापन आधारित व्यवस्था तथा तकनीकी सहायता से आवश्यकता आधारित उपभोग वृत्ति को ध्यानाकर्षी उपभोग वृत्ति में परिवर्तित करने का कार्य किया इसके साथ ही विज्ञापन तथा तकनीकी क्षमता के माध्यम से समाज में इस विचार की स्थाना कराई कि सतत् एवं ब्रांड आधारित उपभोग क्षमता से ही सामाजिक प्रतिष्ठा को मापा जा सकता है, जिसका परिणाम यह हुआ, आवश्यकता आधारित उपभोग की प्रवृत्ति ध्यानाकर्षी उपभोग प्रवृत्ति में रूपांतरित होती गई तथा बाजार अपनी अधिक लाभ कमाने की रणनीतियों में सफल होता चला गया। इसके साथ ही समाज अत्यधिक आत्मकेंद्रित एवं स्वार्थी लोगों तथा किसी भी किमत पर लाभार्जन की बढ़ती प्रवृत्ति के कारण निरंतर बिखराव का शिकार हुआ, मानवीय मूल्यों का क्षरण हुआ। भौतिक वस्तुओं के संग्रह को ही प्रतिष्ठा का आधार माने जाने से प्रत्येक वस्तु एवं भावनाओं का वस्तुकरण किया जाने लगा। चुंकि उपभोक्तावाद का प्रमुख उद्देश्य जीवन संबंधी प्रत्येक पहलू के वस्तुकरण द्वारा लाभ कमाने की इच्छा से है, तो वह इसके लिए समाज की जो आधारभूत अवधारणा है जिसके आधार पर सहवास की व्यवस्था निर्मित होती है, तथा जिसके कारण मनुष्य आपसी सहयोग हेतु प्रेरित होता है, बाजारवाद तथा उपभोक्तावाद उसका भी वस्तुकरण करने से नहीं चूकते।

जिसके परिणाम स्वरूप बाजार अपनी सहुलित के आधार पर जीवन संबंधी उदात्ता का नवीन प्रतिमान निर्मित करता है जिसके परिणाम स्वरूप मनुष्य और समाज उसी भाँति आचरण कर, अपने आप को आधुनिक तथा रिलेवेंट बनाने की चेष्ठा करता है। चूंकि उपभोक्तावाद ने समाजिक चिंतना तथा दृष्टि में परिवर्तन किया तथा व्यक्ति को अत्यधिक आत्मकेंदित बनाया है। परिणाम स्वरूप साहित्य में भी इसी प्रकार की विषयवस्तु का चलन देखने में आया है, क्योंकि साहित्य समाज को प्रतिबिंबित करता है।इस दौर की लगभग सभी साहित्यिक विधाओं में उपभोक्तावादी अवधारणा तथा उसके परिणाम स्वरूप आए बदलावों को रेखांकित किया गया है।

हिंदी कहानी तो अत्यंत बारीकी से इसका चित्रण करती नजर आती है, जैसा उदय प्रकाश द्वारा रचित 'पोलगोमरा का स्कूटर ' में उपभोक्तावादी संस्कृति के परिणाम स्वरूप मध्यवर्ग में वस्तुओं के माध्यम से सामाजिक प्रतिष्ठा के बोध तथा भावनाओं का वस्तुकरण दिखाया गया है, वहीं "पीली छतरी वाली लडकी" कहानी में वैश्वीकरण के प्रभाव में शहरीकरण तथा उसके अकेलेपन और मानवीय संबंधों में आए ह्रास का जीवंत चित्रण दिखाया गया है। इसी प्रकार संजय खाती की "पिटी का साबुन", संजीव का "ब्लैक हॉल" आदि कहानियाँ भी वैश्वीकरण के समाजिक प्रभावों को परिलक्षित करती है।

निष्कर्ष:

इस प्रकार कह सकते हैं, उदारीकरण तथा वैश्वीकरण की पृष्ठभूमि में पनपा बाजारवाद तथा उपभोक्तावाद मात्र एक आर्थिक परिघटना ही नहीं है, बल्कि इसने पूंजी, विज्ञापन और तकनीक की सहायता से व्यक्ति तथा समाज संबंधी सभी अवधारणाओं में परिवर्तन कर बाजार को सर्वव्यापी ताकत के रूप में स्थापित किया है जिसने समाज तथा साहित्य को अत्यंत गहराई से प्रभावित किया है।

संदर्भ सूची:

1. मिश्र भगीरथ, काव्य-शास्त्र, पृष्ठ संख्या -287
2. हिंदी निबंध माला: प्रथम भाग-नाप्र.सभा,काशी, पृष्ठ संख्या -48
3. आचार्य शुक्ल रामचंद्र,हिंदी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ संख्या -2
4. दुबे कुमार अभय,संपादक,भारत का भूमंडलीकरण, पृष्ठ संख्या-108
5. दुबे कुमार अभय, संपादक, भारत का भूमंडलीकरण, सं., पृष्ठ संख्या -110
6. दुबे कुमार अभय, संपादक, भारत का भूमंडलीकरण, पृष्ठ संख्या -111-112
7. खेतान प्रभा, बाजार के बीच: बाजार के खिलाफ, पृष्ठ संख्या -12